हरिशंकर परसाई
जैसे उनके
दिन फिरे

जैसे उनके दिन फिरे

एक था राजा, राजा के चार लड़के। रानियाँ तो अनेक थीं, महल में एक 'पिंजरापोल' ही खुला था। पर बड़ी रानी ने बाकी रानियों के पुत्रों को जहर देकर मार डाला था। और इस बात से राजा साहब बहुत प्रसन्न हुए। वे नीतिवान् थे और जानते थे कि चाणक्य का आदेश है, 'राजा अपने पुत्रों को भेड़िया समझे। बड़ी रानी के चारों लड़के जल्दी ही राजगद्दी पर बैठना चाहते थे, इसलिए राजा साहब को बूढ़ा होना पड़ा।

एक दिन राजा साहब ने चारों पुत्रों को बुलाकर कहा, ''पुत्रो, मेरी अब चौथी अवस्था आ गयी है। दशरथ ने कान के पास के केश श्वेत होते ही राजगद्दी छोड़ दी थी। मेरे बाल खिचड़ी दिखते हैं, यद्यपि जब खिजाब धुल जाता है तब पूरा सिर श्वेत हो जाता है। मैं संन्यास लूँगा, तपस्या करूँगा। उस लोक को सुधारना है, ताकि तुम जब

वहाँ जाओ, तो तुम्हारे लिये मैं राजगद्दी तैयार रख सकूँ।' आज मैंने तुम्हें यह बतलाने को बुलाया है कि गद्दी पर चार के बैठ सकने लायक जगह नहीं है। अगर किसी प्रकार चारों समा भी गये, तो आपस में धक्का-मुक्की होगी और सभी गिरोगे। मगर मैं दशरथ-सरीखी गलती भी नहीं करूँगा कि तुममें से किसी के साथ पक्षपात करूँ। मैं तुम्हारी परीक्षा लूँगा। तुम चारों आज ही राज्य से बाहर चले जाओ। ठीक एक साल बाद इसी फाल्गुन की पूर्णिमा को चारों दरबार में उपस्थित होना। मैं देखूँगा कि इस साल ें किसने कितना धन कमाया और कौन-सी विशेष ोग्यता हासिल की। तब मैं मन्त्री की सलाह से जिसे सर्वोत्तम समझूँगा, राजगद्दी दूँगा।''

'जो आज्ञा।' कहकर चारों ने राजा साहब को भक्तिहीन प्रणाम किया और राज्य के बाहर चले गये।

पड़ोसी राज्य में पहुँचकर चारों राजकुमारों ने चार रास्ते पकड़े और अपने पुरुषार्थ तथा किस्मत को आजमाने चल पड़े।

ठीक एक साल बाद–

फाल्गुन की पूर्णिमा को राज-सभा में चारों लड़के हाजिर हुए। राज सिंहासन पर राजा साहब विराजमान थे, उनके पास ही कुछ नीचे आसन पर प्रधानमंत्री बैठे थे।

आगे भाट, विदूषक और चाटुकार शोभा पा रहे थे।

राजा ने कहा, "पुत्रो ! आज एक साल पूरा हुआ और तुम सब यहाँ हाजिर भी हो गये। मुझे उम्मीद थी कि इस एक साल में तुममें से तीन भाई तो बीमारी के शिकार हो जाओगे या कोई एक शेष तीनों को मार डालेगा और मेरी समस्या हल हो जायेगी। पर तुम चारों यहाँ खड़े हो। खैर, अब तुममें से प्रत्येक मुझे बतलाये कि किसने इस एक साल में क्या काम किया, कितना धन कमाया और राजा के लिए आवश्यक कौन-सी योग्यता प्राप्त की ?"

ऐसा कहकर राजा साहब ने बड़े पुत्र की ओर देखा।

बड़ा पुत्र हाथ जोड़कर बोला, "पिताजी, मैं जब दूसरे राज्य पहुँचा, तो मैंने विचार किया कि राजा के लिए ईमानदारी और परिश्रम बहुत आवश्यक गुण हैं। इसलिए मैं एक व्यापारी के यहाँ गया और उसके यहाँ बोरे ढोने का काम करने लगा। पीठ में मैंने एक वर्ष बोरे ढोये हैं, परिश्रम किया है। ईमानदारी से धन कमाया है। मजदूरी में से बचायी हुई ये सौ स्वर्ण-मुद्राएँ ही मेरे पास हैं। मेरा विश्वास है कि ईमानदारी और परिश्रम राजा के लिए बहुत आवश्यक हैं। और मुझमें ये हैं, इसलिए राजगद्दी का अधिकारी मैं हूँ।"

वह मौन हो गया। राज-सभा में सन्नाटा छा गया।

राजा ने दूसरे पुत्र को संकेत किया। वह बोला,

"पिताजी, मैंने राज्य से निकलने के बाद सोचा कि मैं राजकुमार हूँ, क्षत्रिय हूँ--क्षत्रिय बाहुबल पर भरोसा करता है। इसलिए मैंने पड़ोसी राज्य में जाकर डाकुओं का एक गिरोह संगठित किया और लूटमार करने लगा। धीरे-धीरे मुझे राज्य कर्मचारियों का सहयोग मिलने लगा और मेरा काम खूब अच्छा चलने लगा। बड़े भाई जिसके यहाँ काम करते थे, उसके यहाँ मैंने दो बार डाका डाला था। इस एक साल में कमाई पाँच लाख स्वर्ण-मुद्राएँ मेरे पास हैं। मेरा विश्वास है कि राजा को साहसी और लुटेरा होना चाहिए। तभी वह राज्य का विस्तार कर सकता है। ये दोनों गुण मुझमें हैं, इसलिए मैं ही राजगद्दी का अधिकारी हूँ।"

'पाँच-लाख' सुनते ही दरबारियों की आँखें फटी की फटी रह गयीं।

राजा के संकेत पर तीसरा कुमार बोला, "देव, मैंने उस राज्य में जाकर व्यापार किया। राजधानी में मेरी बहुत बड़ी दुकान थी। मैं घी में मूँगफली का तेल और शक्कर में रेत मिलाकर बेचा करता था। मैंने राजा से लेकर मजदूर तक को साल-भर घी-शक्कर खिलाया। राज-कर्मचारी मुझे पकड़ते नहीं थे क्योंकि उन सबको मैं मुनाफे में से हिस्सा दिया करता था। एक बार स्वयं राजा ने मुझ से पूछा कि शक्कर में रेत-सरीखी क्या मिली रहती है ? मैंने उत्तर दिया कि करुणानिधान, यह विशेष प्रकार की उच्चकोटि

की खदानों से प्राप्त शक्कर है, जो केवल राजा-महाराजाओं के लिए मैं विदेश से मँगाता हूँ। राजा यह सुनकर बहुत खुश हुए। बड़े भाई जिस सेठ के यहाँ बोरे ढोते थे, वह मेरा ही मिलावटी माल खाता था। और मँझले लुटेरे भाई को भी मूँगफली का तेल-मिला घी तथा रेत-मिली शक्कर मैंने खिलाई है। मेरा विश्वास है कि राजा को बेईमान और धूर्त होना चाहिए तभी उसका राज टिक सकता है। सीधे राजा को कोई एक दिन भी नहीं रहने देगा। मुझमें राजा के योग्य दोनों गुण हैं, इसलिए गद्दी का अधिकारी मैं हूँ। मेरी एक वर्ष की कमाई दस लाख स्वर्ण मुद्राएँ मेरे पास हैं।''

'दस लाख।' सुनकर दरबारियों की आँखें और फट गयीं।

राजा ने तब सबसे छोटे राजकुमार की ओर देखा। छोटे कुमार की वेशभूषा और भाव-भंगिमा तीनों से भिन्न थी। वह शरीर से अत्यन्त सादे और मोटे कपड़े पहने था। पाँव और सिर नंगे थे। उसके मुख पर बड़ी सरलता और आँखों में बड़ी करुणा थी।

वह बोला—''देव, मैं जब दूसरे राज्य में पहुँचा तो मुझे पहले तो यह सूझा ही नहीं कि क्या करूँ। कई दिन मैं भूखा-प्यासा भटकता रहा। चलते-चलते एक दिन मैं एक अट्टालिका के सामने पहुँचा। उस पर लिखा था

'सेवा आश्रम'। मैं भीतर गया तो वहाँ का वैभव देखकर दंग रह गया। ऐसा ऐश्वर्य तो राज-भवन में भी नहीं है। वहाँ तीन-चार आदमी बैठे ढेर की ढेर स्वर्ण-मुद्राएँ गिन रहे थे। मैंने उनसे पूछा, 'भद्रो, तुम्हारा धन्धा क्या है ?'

उनमें से एक बोला, 'त्याग और सेवा।' मैंने कहा, 'भद्रो, त्याग और सेवा तो धर्म है। ये धन्धे कैसे हुए ?' वह आदमी चिढ़कर बोला, 'तेरी समझ में यह बात नहीं आयेगी। जा अपना रास्ता ले।

स्वर्ण पर मेरी ललचाई दृष्टि अटकी थी। मैंने पूछा, 'भद्रो, तुमने इतना स्वर्ण कैसे पाया ?'

वही आदमी बोला, 'धन्धे से।'

मैंने पूछा, 'कौन-सा धन्धा ?'

वह गुस्से से बोला, 'अभी बताया न। सेवा और त्याग। तू क्या बहरा है ?'

उनमें से एक को मेरी दशा देखकर दया आ गयी। उसने कहा, 'तू क्या चाहता है ?'

मैंने कहा, 'मैं भी आपका धन्धा सीखना चाहता हूँ। मैं भी बहुत-सा स्वर्ण कमाना चाहता हूँ।'

उस दयालु आदमी ने कहा, 'तो तू हमारे विद्यालय में भरती हो जा। हम एक सप्ताह में तुझे सेवा और त्याग के धन्धे में पारंगत कर देंगे। शुल्क कुछ नहीं लिया जायेगा। पर जब तेरा धन्धा चल पड़े, तब श्रद्धानुसार

गुरुदक्षिणा दे देना।'

पिताजी, मैं सेवा-आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने लगा। मैं वहाँ राजसी ठाठ से रहता, सुन्दर वस्त्र पहनता, सुस्वादु भोजन करता, सुन्दरियाँ पंखा झलतीं, सेवक हाथ जोड़े सामने खड़े रहते। अन्तिम दिन मुझे आश्रम के प्रधान ने बुलाया और कहा, 'वत्स तू सब कलाएँ सीख गया। भगवान् का नाम लेकर कार्य आरम्भ कर दे।' उन्होंने मुझे ये मोटे सस्ते वस्त्र दिये और कहा, 'बाहर इन्हें पहनना। कर्ण के कवच-कुण्डल की तरह ये बदनामी से तेरी रक्षा करेंगे। जब तक तेरी अपनी अट्टालिका नहीं बन जाती, तू इसी भवन में रह सकता है। जा, भगवान् तुझे सफलता दें।'

बस, मैंने उसी दिन 'मानव-सेवा-संघ' खोल दिया। प्रचार कर दिया कि मानव-मात्र की सेवा करने का बीड़ा हमने उठाया है। हमें समाज की उन्नति करनी है, देश को आगे बढ़ाना है। गरीबों, भूखों, नंगों, अपाहिजों की हमें सहायता करनी है। हर व्यक्ति हमारे इस पुण्य-कार्य में हाथ बँटाए, हमें समाज सेवा के लिए चन्दा दे। पिताजी, उस देश के निवासी बड़े भोले हैं। ऐसा कहने से वे चन्दा देने लगे। मँझले भैया से भी चन्दा मैंने लिया था, बड़े भैया के सेठ ने भी दिया और बड़े भैया ने भी पेट काटकर, दो मुद्राएँ रख दीं। लुटेरे भैया ने भी मेरे

चेलों को एक सहस्त्र मुद्राएँ दी थीं। क्योंकि एक बार राजा के सैनिक जब उसे पकड़ने आये, तो उसे आश्रम में मेरे चेलों ने छिपा लिया था। पिताजी, राज्य का आधार धन है। राजा को प्रजा से धन वसूल करने की विद्या आनी चाहिए। प्रजा से प्रसन्नतापूर्वक धन खींच लेना, राजा का आवश्यक गुण है। उसे बिना नश्तर लगाये खून निकालना आना चाहिए। मुझमें यह गुण है, इसलिए मैं ही राजगद्दी का अधिकारी हूँ। मैंने इस साल में चन्दे से बीस लाख स्वर्ण-मुद्राएँ कमाईं जो मेरे पास हैं।

'बीस लाख !' सुनते ही दरबारियों की आँखें इतनी फटीं कि कोरों से खून टपकने लगे।

तब राजा ने मन्त्री से पूछा, "मंत्रिवर, आपकी क्या राय है ? चारों में कौन कुमार राजा होने के योग्य है ?"

मंत्रिवर बोले, "महाराज, इसे सारी राजसभा समझती है कि सबसे छोटा कुमार ही सबसे योग्य है। उसने एक साल में बीस लाख मुद्राएँ इकट्ठी कीं। उसमें अपने गुणों के सिवा शेष तीनों कुमारों के गुण भी हैं—बड़े जैसा परिश्रम उसके पास है। दूसरे कुमार के समान वह साहसी और लुटेरा भी है। तीसरे के समान बेईमान और धूर्त भी। अतएव उसे ही राजगद्दी दी जाये।"

मन्त्री की बात सुनकर राजसभा ने ताली बजाई।

दूसरे दिन छोटे राजकुमार का राज्याभिषेक हो गया।

तीसरे दिन पड़ोसी राज्य की गुणवती राजकन्या से उसका विवाह भी हो गया। चौथे दिन मुनि की दया से उसे पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। और वह सुख से राज करने लगा।

कहानी थी सो खत्म हुई। जैसे उनके दिन फिरे, वैसे सबके फिरें।